Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education

Vol. VI, Issue No. XI, July-2013, ISSN 2230-7540

REVIEW ARTICLE

पूर्व मध्यकाल में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों का मेल

AN INTERNATIONALLY INDEXED PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.ignited.in

Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. VI, Issue No. XI, July-2013, ISSN 2230-7540

पूर्व मध्यकाल में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों का मेल

Dr. Shriphal Meena*

Lecturer, Department of History, Govt. College Karauli, Rajasthan

सार – ***सर्वप्रथम हमें सामाजिक और सांस्कृतिक अवधारणा की स्थिति को समझने के लिये सम्पूर्ण पूर्व मध्यकालीन परिवेश को समझने की बेहद आवश्यकता है। वैसे सामाजिकता का अर्थ है समाज से जुड़ाव और सभ्यता की पहचान। उदाहरण के रूप में - वेश-भूषा, ऐश्वर्य, सज्जा, भवन-नगर, मार्ग-वाहन, गति-प्रगति आदि से सम्बन्धित संदर्भ की व्यापकता। इस प्रकार समाजिकता -सभ्यता को द्योतित करता है। इसी प्रकार संस्कृति का शब्दिक अर्थ सम् और कृति की अभिव्यक्ति है। इस शब्द का निर्माण सम् और कृति-इन दो शब्दों से मिलकर होता है। इस प्रकार यह शब्द सम्यक् कृति, महान् साधना और महान् सर्जना से अभिव्यक्ति पाता है। इस शब्द का पर्याय है- पूर्णत दोषमुक्त किया हुआ सन्दर्भ। इसी क्रम में डा. डी. एन. मजुमदार का कहना है-सामाजिकता सामाजिक तथा वाह्य गुणों का द्योतक है- जबकि संस्कृति के अन्तर्गत मनुष्यों की रीति-नीति, लोक-विश्वास, आदर्श, कलाएं तथा उपलब्ध समस्त कौशल तथा योग्यताओं को लिया जा सकता हैं।***

----------X----------

प्रस्तावना

एक वृहद दृष्टिकोण के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिकता एक शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा। सामाजिकता सम्पूर्ण सभ्यता और कलेवर के आधार पर रूप परिवर्तन करती पूर्व मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा है। इस प्रकार सामाजिकता मानव परिवर्तन करती है और संस्कृति मानव-परिष्करण का क्रम निर्वाह करती है। यह क्रम मानव-परिहार की अभिव्यक्ति नहीं है। इस प्रकार एक होने के बावजूद दोनो तत्वों में पर्याप्त अंतर है। इस क्रम में तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति को पूर्णत व्यवस्थित करने के लिये उनके दोनों पक्षों को अलग-अलग देखना आवश्यक है।

अध्ययन क उद्देश्य

1. हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा
2. रतीय संस्कृति मूलतः संश्लिष्ट है और इसमें अनेक विचारधाराओं का समन्वय है।

पूर्व मध्यकालीन सामाजिक स्थिति

“हिन्दी साहित्य का इतिहास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल की स्थिति को 1375-1700 तक स्वीकार किया है। भारतीय इतिहास के अनुसार उस समय पठानों का शासन-काल समाप्त हो रहा था और मुगलों के शासन काल का पदार्पण हो रहा था। इसी क्रम में 1526 ई0 में बाबर ने इब्राहिम लोदी को परास्त किया था। उसने 1526 से 1530 तक दिल्ली पर शासन किया था। उसके बाद हुमायू और फिर सन् 1556 से 1605 तक अकबर का शासन-काल रहा। पठानों से लेकर अकबर के स्थिर होने तक भारतवर्ष का समय बड़ा ही कष्टपूर्ण था। सम्पूर्ण समाज ही लगभग अस्थिर हो गया था। भारत वर्ष में इन वर्षों में लगातार बड़े-बड़े राजनीतिक परिवर्तन हुए। शासन की प्राप्ति के लिए परस्पर लड़ाई-झगड़े उस समय की खास विशेषता रही है। सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था सुरक्षा की दृष्टि से छिन्न-भिन्न हो रही थी। कहा जा सकता है कि उस समय कुछ भी स्थायी नहीं था। बहरहाल यह सर्वविदित है कि भारतीयों को वर्तमान स्थिति पूर्व मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा में पहुंचने के लिये बेहद कठोर संघर्ष करना पड़ा था। कहा जा सकता है कि इसी क्रम में आदि मानव अपनी असामाजिक, अव्यवस्थित और अमर्यादित स्थिति से आगे बढ़कर आज के सामाजिक, सुव्यवस्थित और मर्यादित स्थिति तक पहुंचकर पूर्ण मनुष्य बनने का ख्वाब पूरा कर रहा है।

प्रकारान्तर से इस सन्दर्भ में सर्वाधिक प्राचीन संस्कृतियों में सनातन धर्मी भारतीय संस्कृति की एक अपनी अलग ही विशिष्टता रही है। इस क्रम में मनुष्य आज भी निरन्तर अपनी प्रासंगिकता बनाये हुए है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वेद

www.ignited.in

कालीन योग शास्त्र आज भी अति आधुनिक और शक्ति-सम्पन्न अमेरिका जैसे देश में भी पिछले कुछ वर्षों से न केवल लोकप्रिय है बल्कि आज के सन्दर्भ में शोधजन्य भी है। इस क्रम में प्राचीन ग्रंथों से ज्ञान प्राप्त कर प्रयोगों द्वारा उन्हें सिद्ध करते हुए उनका नवीनीकरण किया जा रहा है। इसी आधार पर हाल ही में अति लोकप्रिय नीम का पेटेंट किया गया। अन्य अतिआवश्यक सामग्रियों को पेटेंट करने के बावजूद केवल नीम का उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि इस कार्य में "विश्व की न्याय प्रक्रिया के अन्तर्गत भारत के पक्ष में न्याय मिला। इस क्रम में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की जीत के साथ साथ भारतीय मनीषा की भी जीत हुई। मात्र इतना ही नहीं, इसी प्रकार विज्ञान की प्रगति के क्रम में तहलकाश का विषय कोलोन अथवा जीनोम उत्पादन भी रहा। मनुष्य के प्रतिरूप की भी कल्पना की भी कल में कुछ उसी प्रकार थी। कुछ उसी प्रकार सामने आयी- जैसे पेड की टहनियों से पेड़ का निर्माण होता है। मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा बहरहाल मनुष्य के निर्माण की परिकल्पना को साकार करने का जो श्रेय विदेशियों को मिला है। यह भी भारतीय वाड्मय के दुर्गा सप्तशती के रक्तबीज नामक अंश से लिये गये संदर्भ का ही प्रतिफलन है। तात्पर्य यह है कि वर्तमान संदर्भो से बहुत पहले भी भारत धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से बेहद समृद्ध देश रहा है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक या अन्य दृष्टिकोणों से किसी भी राष्ट्र अथवा देश की संस्कृति से भारतवर्ष कभी भी पीछे नहीं रहा है।

इस क्रम में कहा जा सकता है कि दो देशों की संस्कृतियों के बीच जो खींचतान या मेल-मिलाप की स्थिति पैदा होती है वह वास्तव में किसी साहित्यकार या इतिहासकार द्वारा स्पष्ट और पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती। निश्चित रूप से किसी लेखक की हर संभव कोशिश के बाद भी किसी घटना का सही चित्रण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। इस क्रम में यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिक संचार प्रणालियों से भी कुछ न कुछ अवश्य प्रस्तुतिकरण में अधूरापन रह जाता है। विज्ञान की इतनी उन्नति के बावजूद किसी संदर्भ या घटना के यथार्थ चित्रण की कोई व्यवस्था नहीं है। इस प्रकार किसी भी प्रस्तुतिकरण में सभी बाते या सभी कोण नहीं आ पातें हैं। मगर इसके साथ ही घटना का कोई हस्तक्षेपक घटनास्थल पर उपस्थित हो या न हो बाद तक के लिये हर घटना अपना प्रभाव छोड़ जाती है।

पूर्व मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा इस क्रम में मध्यकालीन घटनाओं के कई उदाहरण आज भी भारत में उपस्थित हैं। वर्तमान दशक का एक ताजा. उदाहरण श्री रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद मध्यकालीन स्मृतियों को पुनः जिन्दा कर देता है। भारतीय संस्कृति मूलतः संश्लिष्ट है और इसमें अनेक विचारधाराओं का समन्वय है। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि इसमें विभिन्न युगों की सामाजिक व्यवस्था में विकसित विश्वासों, रीति-रिवाजों, अनुष्ठानों, कलाओं, धर्मों का सगुम्फन है। इसी लिये वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की विशेषता ही अनेकता में एकता के सूत्र की तलाश है। प्राचीनकाल से ही भारतवर्ष में अनेक जातियों के आने और उनके बस जाने का उल्लेख मिलता है। प्रारम्भिक संघर्ष के बाद विजेता और विजित का सामंजस्य होता रहा है। इसी क्रम में श्रीमद्भागवत्गीता में ऐसी अनेक जातियों के उल्लेख मिलते हैं जो जो समय-समय पर भारत वर्ष में आती रहीं और यहाँ की विशाल व्यवस्था में अन्तर्भुक्त होती गयीं।

इन समस्त जातियों में भी मुख्य है-किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुक्कस आंभीर, शूध्य, यवन, श्वपच शकादि मगर मध्यकाल में जो जातियां आई-वह पूर्व जातियों से सर्वथा भिन्न रही हैं। शायद यही कारण है कि ये हिन्दू-व्यवस्था से मेल नहीं बैठा सकीं। इसी क्रम में कहा जा सकता है कि यदि हिन्दुओं को अपनी प्राचीन परम्परा पर गर्व था- तो मुस्लिमों को अपने विजयी होने का दंभ। शायद, इसीलिये ये दोनों ही सामाजिक व्यवस्थाएं समानान्तर रूप से आगे बढ़ीं। हिन्दुओं और मुसलमानों ने कतिपय व्यावहारिक मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा बातों को एक-दूसरे से ग्रहण भी किया। इसी क्रम में कहा जा सकता है कि मुसलमानों की विलासिता का हिन्दू समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। शासकों के हरम में सैकड़ों हिन्दू बालाओं को पहुचाया जाने लगा। इसी क्रम में आत्मरक्षार्थ हिन्दू-सामाजिक व्यवस्था में संकीर्णता का प्रवेश हो गया। लगभग हिन्दुओं में भी अनेकानेक दोष आ गये। पर्दा प्रथा और बाल-विवाह प्रथा का प्रारम्भ भी संभवतः यही से हुआ। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था के अन्दर जातियों और उपजतियों की संख्या में वृद्धि होती चली गयी। इसी प्रकार के बंधन भी क्रमशः कठोर होते गये। हिन्दुओं में भी बहु-विवाह और पुनर्विवाह का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। स्त्रियों के सामाजिक अधिकार तो पहले भी कम ही थे। इस प्रकार स्त्रियाँ इस युग में पूर्णतः पुरूषों की सम्पत्ति मान ली गईं। इन्हें पूर्णरूपेण-पुरूषों के अधीन मान लिया गया। फिलहाल अनेकानेक कारणों से जो भी परिवर्तन सामने आये- इस देश में धर्मान्तरित लोगों के अपने पूर्व संस्कार पूर्णतः समाप्त नहीं हो पाये। यही कारण है कि ऊँच-नीच या जातिप्रथा सम्बन्धित अनेक विशेषताएं मुसलमानों में भी आ गयीं। तथापिं स्त्रियों की दशा दोनों ही पक्षों में लगभग समान थी।

इस क्रम में एक की मान्यता पूर्णवत थी- तो दूसरा आक्रान्त भाव से यही सब करने के लिये अभिशप्त और मजबूर था। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि देश पर मुसलमानों का शासन होने के कारण हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व, उत्साह इत्यादि के

लिए कोई स्थान ही नहीं रह गया था। यही कारण है कि हिन्दू जनता के समक्ष ही उनके इष्टदेवों के मंदिर मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा गिराये जाने लगे। प्रकारान्तर से देव-मंदिरों और पूज्य पुरुषों को अपमानित करने एवम् धार्मिक प्रतीकों के नष्ट करने का कार्य चलता रहा-मगर हिन्दू जनमानस विवश भाव से इन स्थितियों को देखता रहा था। इस क्रम में वह अपनी गत और श्रीहत वीरता के गीत न तो गा ही सकता था और न ही लज्जित हुए बिना सुन ही सकता था।

इसी प्रकार लगभग मुस्लिम समाज में भी कई वर्ग बन गये थे। इन वर्गों में एक ऐसे मुसलमान थे जो परम्परागत मुस्लिम सम्प्रदाय के ही थे- जो भारतवर्स की वर्तमान स्थितियों के जन्म में कारण स्वरूप थे। ऐसे मुसलमान इन सभी स्थितियों में काफी प्रसन्न रहा करते थे और ऐसी स्थितियों को निरन्तर बनाने की ओर अग्रसर भी थे। ये विपरीत धर्म के व्यक्तियों को कष्ट देने में ही प्रसन्नता का अनुभव करते थे। कुछ ऐसे भी मुसलमान थे- जो धर्म-परिवर्तन के कारण मुसलमान हो गये थे। मगर इस सामूहिक उत्पीड़न में बराबर शामिल रहते थे। कुछ ऐसे भी मुस्लिम थे जो धार्मिक स्तर पर भारतीय महात्माओं से होड़ लिया करते थे और अपनी परम्परा के "पीर और फकीर को ही सच्चा साधक मानने के पक्षधर थे। इसी क्रम में ये भारतीय मतावलम्बी समुदाय पर अपनी पकड़ मजबूत बनाने की कोशिश करते रहते थे। इस प्रकार ऐसे मुसलमान येन-केन-प्रकारेण दिन-रात अपने धर्म की प्रतिस्थापना की ही कोशिश करते रहते थे। इसी क्रम में कुछ ऐसे सन्त-महात्मा भी थे- जो तत्कालीन परिस्थितियों को सहज बनाने की कोशिश करते रहते थे। वैसे ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम थी।

मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा मुस्लिम आक्रमण पूर्व मध्यकाल में ही जोरदार ढंग से प्रारम्भ हुये थे। छिट-पुट आक्रमण तो आदिकाल से ही प्रारम्भ था। फिलहाल आदिकाल की स्थिति कुछ और थी। आक्रमणकारियों की स्थिति के सामने भारतीय जन-मानस मजबूत था। तत्कालीन परिवेश में किसी वर्ग या सम्प्रदाय के अधिपत्य की स्थिति नहीं थी और न ही निरन्तर उस अधिपत्य की स्थापना जैसी स्थिति ही थी। मगर मध्यकाल में मुसलमानों के अधिपत्य की स्थिति को स्वीकार किया जा सकता था। इस प्रकार पूर्णरूप से यह एक सामाजिक और राजनीतिक अस्थिरता एवम् सांस्कृतिक संक्रमण का युग था।

इतिहास गवाह है कि मुस्लिम शासकों का उद्देश्य भारत में केवल राजनीतिक प्रभुता स्थापित करना मात्र नहीं था बल्कि ये येन-केन-प्रकारेण पूरे देश को इस्लामिक देश के रूप में विकसित करना चाहते थे। विश्व के समस्त इतिहासकारों ने मुस्लिम शासकों की धर्मान्धता को अपने-अपने तरीके से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। वैसे मध्यकालीन भारतीय इतिहास मुसलमानों द्वारा किये गये अमानुषिक अत्याचारों का ज्वलंत दस्तावेज है। इसी क्रम में हसन निजामी ने कुतुबुद्दीन ऐबक के कारनामों का वर्णन करते हुए लिखा है "ऐबक ने तलवार के बूते काफिरो की गन्दगी और अपावनता से हिन्दू देश को मुक्त कर दिया। उसने पूरे देश को बहुदेववाद के कांटो व मूर्तिपूजा की गन्दगी से रहित कर दिया तथा अपने राजकीय वैभव से एक भी मंदिर नष्ट करने से नहीं छोड़ा। इसी क्रम में दिल्ली पराभव के सम्बन्ध में मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा उसने लिखा है कि पूरा नगर तथा उसके निकट का स्थान मूर्तिपूजा से मुक्त कर दिया गया। भगवान की मूर्तियों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण करा दिया गया। ऐबक द्वारा दिल्ली में स्थित जामा मस्जिद उन कीमती पत्थरों और सोने से बनवायी गयी थी जो हाथियों द्वारा मंदिर गिराकर लाया गया था। इसी क्रम में ऐबक ने बनारस में एक हजार मन्दिरों को गिरा दिया और उनकी जगह मस्जिदों का निर्माण कराया गया। उसी का कथन है - कालिंजर के किले पर विजय प्राप्त करने के बाद मुसलमानों ने खूब आनन्द मनाया। इस प्रकार मंदिर-मस्जिद में बदल दिये गये। माला, जप तथा मंत्रोच्चारण के स्थान पर आकाश तक गूंजने वाली अजान सुनायी पड़ने लगी। मूर्तिपूजा का नामोशिान मिट गया। बिहार में मुहम्मद बख्तियार खिलजी द्वारा मुण्डित सिर वाले असंख्य ब्राह्मणों का बध कर दिया गया। मंदिर के पुस्तकालय में संग्रहीत संस्कृत के ग्रंथ जला दिये गये। ब्राह्मण इतनी अधिक संख्या में मारे गये कि उन पुस्तको का विषय अथवा शीर्षक बताने वाला कोई नहीं बचा। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दू माताओं के गर्भ से उत्पन्न मुस्लिम शासक अधिक क्रूर थे। फिरोज तुगलक की माँ ही राजपूत थी। इसी प्रकार सिकन्दर लोदी हेमा नामक सुनारिन का पुत्र था। जिसकी क्रूरता के ज्वलंत उदाहरणों से इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। इसी क्रम में इस्लाम न स्वीकार करने पर जिन्दा जला देना कुरुक्षेत्र के सहस्त्रों तीर्थयात्रियों का वध किया जाना, हिन्दुओं के जमुना स्नान पर पाबन्दी लगाना और नाइयों के लिए यह आदेश कि हिन्दुओं के सिर व दाढ़ी न मुंडे जाएं आदि मुस्लिमों के मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा अत्याचारों के जीवंत उदारहण हैं। इस प्रकार उनके धार्मिक उन्माद के ज्वलंत प्रमाण अविस्मरणीय हैं।

www.ignited.in

पूर्व मध्यकालीन धार्मिक स्थिति

वैसे सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के फलस्वरूप इस बीच जो भी धार्मिक परिवर्तन हुए उन्हें विकास की अवस्थाओं के रूप में ही ग्रहण किया जा सकता है। इसी क्रम में कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य की उपासना पद्धति और कर्मकाण्डों के विभिन्न पक्षों को लेकर तत्कालीन परिवेश में आध्यात्मिक और धार्मिक चेतना का नवीन संस्कार हुआ जिससे उपनिषद और वेदांत ज्ञान की चिंतन धारा की एक विशिष्ट अवस्था का सूत्रपात हुआ। इस संदर्भ की अद्भुत प्रस्तुति शंकराचार्य के भाष्य में हुयी है। मगर अद्वैत बाद के प्रतिपादन में भक्ति और उपासना का क्षेत्र प्रायः उन्मुक्त ही रहा है ! यही कारण है कि उपासना पर अधिक बल देने वाले दक्षिण के भक्तों द्वारा मध्यकालीन हिन्दू और मुस्लिम समाज में सामाजिक व सांस्कृतिक अवधारणा इस अद्वैतवाद का खुलकर विरोध किया गया। वैसे इसमें सन्देह नहीं है कि बैद्धिक चिन्तन की दृष्टि में अद्वैत सिद्धांत प्राय विश्व की दार्शनिक मीमांशाओं में सर्वोपरि है। बावजूद इसके ज्ञान और बुद्धि के धरातल पर मनुष्य को तृप्ति प्रदान करने और दैनिक जीवन सम्बन्धी रागात्मक व्यवहारिकता की इसमें बेहद कमी है। इसी प्रतिक्रिया के कारण वेदान्त-सूत्रों की व्याख्या अनेक विद्वानों द्वारा प्रस्तुत की गयी। इस क्रम में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत व्याख्या से प्रचलित सामाजिक संस्कारों का अच्छी तरह मेल-जोल बना रहा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस क्रम में सुदृढ़ पृष्ठभूमि तैयार हो गयी। दक्षिण की इस भक्ति-पद्वति का प्रभाव तुलसी काल में ही उत्तर भारत में भी पड़ना प्रारम्भ हो गया मगर उत्तर भारत की धार्मिक परंपराएं दक्षिण से प्रायः भिन्न थीं। फिलहाल यहाँ बौद्ध, जैन और इस्लाम आदि सभी धर्मों का समान रूप से प्रचार था। समय के साथ इन्हीं धर्मों के जोड़-तोड से और भी न जाने कितने सम्प्रदायों का निर्माण होता चला गया। इस क्रम में निर्गुण-निराकार ब्रहम का ज्योतिदर्शन, अनहदवाद-श्रवण, कुंडलिनी शक्ति, जागरण और योग की समाधि अवस्था का प्रमुख महत्व है।

ये सम्पूर्ण सम्प्रदाय नितान्त नवीन सम्प्रदाय भी नहीं कहे जा सकते हैं क्यों कि ये समस्त सम्प्रदाय पातंजलि के योग-दर्शन के आधार पर ही विकसितं हुए हैं जिन्हें पूर्व परम्परा द्वारा ही पोषित किया गया है। फिलहाल आगे चलकर इन सबका ध्यान ज्ञान-पक्ष से हटकर सिर्फ क्रिया से सम्बद्ध रह गया। इसी क्रम में कुछ सम्प्रदायों ने तो तांत्रिक स्वरूप भी ग्रहण कर लिया। बहरहाल इसी चमत्कार के द्वारा कुछ लोगों को ठगा भी गया। वैसे कहा जा सकता है कि निर्गुण सन्तमत का भी प्रभाव बरकरार था- जिसका प्रवर्तक कबीर को माना जाता है। धर्म का वास्तविक प्रभाव कर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों धाराओं को प्रभावित करता है। इस क्रम में कहा जा सकता है कि इन तीनों धाराओं का सामंजस्य ही धर्म के स्वरूप को नियंत्रित करता है। शायद इसका स्पष्ट कारण यह है कि ज्ञान, कर्म और भक्ति का आपस में जब तक सामंजस्य बना रहता है- तब तक धर्म भी अपनी परिपूर्णता के साथ प्रायः सजीव दशा में विकसित होता रहता है।

इसी क्रम को स्पष्ट करते हुए विद्वानों ने धर्म के साथ ज्ञान, कर्म और भक्ति की प्रासंगिकता को भी अपने ढंग से स्वीकार, करने का प्रयास किया है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन तीनों का व्यापक सम्बन्ध धर्म की परिपूर्णता के लिये अनिवार्य है। इनमें से किसी एक की भी कमी धर्म को विकलांग कर देती है। यदि ज्ञान और कर्म धर्म के हाथ और पैर हैं तो भक्ति धर्म का हृदय है। इस प्रकार इन तीनों का संयुक्त सम्मिलन धर्म को बेहद स्वस्थ और पोख्ता बना देता है। इसीलिये कहा जाता है कि एक हृदयहीन व्यक्ति जीवन की संपूर्ण वास्तविकता और संवेदना से रिक्त हो जाता है। इसी प्रकार धर्म भी ज्ञान, कर्म और भक्ति के अभाव में निरर्थक और संवेदना से शून्य हो जाता है।

धर्म को मनुष्य से जोड़कर देखा जाय तो कहा जा सकता है कि तीनों अंगों के अभाव में धर्म रूपी मनुष्य भी निष्प्राण हो जाता है। वैसे समाज के दृष्टिकोण से देखा जाय तो ज्ञान समाज के वर्ग - विशेष के लिये बहेद अनिवार्य है। इस प्रकार धर्म समाज को बेहद समुन्नत, समृद्ध और विकसित करने का माध्यम है। इसीलिये कहा जाता है कि एक प्रबुद्ध व्यक्ति ही धर्म का महत्व और उसकी मर्यादा समझता है। वैसे आम-जन-समूह की संपत्ति कर्म और भक्ति ही होती है।

धर्म की भावात्मक अभिव्यक्ति बेहद मर्मस्पर्शी होती है। वैसे विशिष्ट जन अनुभूति को ही भक्ति कहते हैं। वैसे भी कोई भावना कहीं दवती. है- तो कहीं उभरती, मुड़ती, टूटती और जुड़ती है। इसी क्रम में कहा जा सकता है कि परम्परागत रूप से भावना आज तक निरन्तर परिवेश को प्रभावित करती आ रही है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसी संदर्भ की अभिव्यक्ति करने के क्रम में कहते हैं-ष्अर्भशून्य बाहरी विधि-विधान, तीर्थाटन, पर्वस्नान आदि की निरन्तरता के सन्दर्भ में जो कार्य पहले हुआ था- वह भी कर्म के तंग गडढे से निकालकर प्रकृतिधर्म के खुले क्षेत्र में आने के लिए नहीं बल्कि किनारे लगा देने जैसा था। जनता की दृष्टि को आत्म-कल्याण, लोक-कल्याण विधायक सच्चे कार्मो की ओर ले जाने की बजाय जनता को कर्म क्षेत्र से हटाने में ज्यादा सफल पाये गये। इस प्रकार मध्यकाल के पूर्व में जो अलग-अलग छोटे-छोटे सम्प्रदाय बने-उनकी बानगी ही गुह्य-रहस्य और सिद्धि इत्यादि की बात से उठी थी। वे अपनी रहस्यवादिता की धाक जमाने के लिये बाह्य-जगत की बात छोड़कर घट के भीतर कोठों की बाते बताया करते थे। उनकी अंतरसाधना में भक्ति, प्रेम इत्यादि हृदय के स्वाभाविक भावों के लिए कोई स्थान नहीं था।

उनके अनुसार-ईश्वर को प्राप्त करना सभी के लिए ही सुलभ था। एक तो उस समय राजनीतिक सामाजिक अस्थिरता की स्थिति थी। उसमें ऐसी बातों का प्रादुर्भाव इत्यादि का असर सामान्य अशिक्षित अथवा अर्द्धशिक्षित जनता में ये हुआ कि इनका मन सच्चे शुभकर्मों तथा भगवद्प्राप्ति भक्ति की स्वाभाविक पद्धति से हटकर अनेक प्रकार के तंत्र-मंत्र व सिद्धियों इत्यादि के भँवर में चक्रवात की भाँति उलझ कर रह जाय। उस समय की इस धार्मिक स्थिति को स्पष्ट करते हुये तुलसीदास जी ने भी लिखा है

यदि संक्षिप्त रूप से देखे तो जिस समय मुसलमान भारत आये- उस समय सच्चे धर्म का और धर्म भाव का बहुत कुछ ध्वंस हो गया था और उन परिस्थितियों में परिवर्तन के लिए बहुत कड़े धावकों की जरूरत थी। मगर सामान्य जन-समुदाय-जहाँ इस स्थिति में ही जीवन-यापन कर रहा था। वहीं शास्त्रयज्ञ, विद्वानों आदि पर इन वाणियों का कोई असर न था। वे जहॉ-तहाँ पड़े अपने कार्य कर रहे थे। इसी क्रम में शास्त्रार्थ भी हो रहा था। धार्मिक खंडन-मंडन के ग्रंथ भी लिखे जा रहे थे। उस समय विशेष चर्चा वेदांत की थी। ऐसी स्थिति में कालदर्शी भक्त कवि जनता के हृदय को संम्भालने के प्रायोजन को पूरा करने की कोशिश कर रहे थे। भक्ति के क्रम में जो जोश दक्षिण भारत से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर पहले से ही आ रहा था- उसे अस्त-व्यस्त जीवन और राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़े जनता के जीवन में फैलने का पूरा-पूरा अवसर मिला। उत्तर मध्य भारत में रामानुजाचार्य की शिष्य पंरपरा में रामानंद जी हुये जिन्होंने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर जोर दिया। इसी क्रम में उन्होंने राम भक्तों का एक विशाल सम्प्रदाय तैयार कर लिया। इसी प्रकार वल्लभाचार्य जी ने प्रेममूर्ति कृष्ण को लेकर जनता को रसमग्न कर दिया। इस प्रकार रामोपासक और कृष्णोपासक भक्तों की पंरपरायें आगे बढ़ी जिनसे भारतीय जन-मानस को प्रबल आस्था और विश्वास को वास्तविक रूप में प्राप्त करने वाले रत्नों की प्राप्ति हुई।

सांस्कृतिक परिवेश

हिंदी साहित्य में आदिकाल का आरम्भ उस समय हुआ जब भारतीय संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। आदिकालं हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के परस्पर मिलन का काल है। हर्षवर्द्धन के समय हिन्दू संस्कृति प्रत्येक क्षेत्रा मे उन्नति के शिखर पर थी। लोगों के आपसी भेद-भाव समाप्त हो गए थे तथा स्वाधीनता व देशभक्ति की भावना को प्रोत्साहन मिल रहा था। संगीत, चित्रामूर्ति एवं भवन-निर्माण इत्यादि कलाओं में ज्यादा रूचि दिखाई देने लगी थी, विशेष रूप से मन्दिरों व मस्जिदों का निर्माण धार्मिक सद्भावना का घोतक था। भुवनेश्वर, पुरी, खजुराहों, सोमनाथ, बेलोर काँची, तंजौर आदि स्थानों पर अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण आदिकाल के आरम्भ के समय ही बनाए गए थे। आबू का जैन मन्दिर ग्यारहवीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण देन है जो कि भारतीय स्थापत्य का बेमिसाल नमूना है। अरब इतिहासकार अलबरूनी तथा महमूद गजनवी इन मन्दिरों की भव्यता, विशालता तथा भारतीय कलाओं में धार्मिक भावनाओं की ऐसी व्यापक अभिव्यक्ति को देखकर चकित रह गए थे। किन्तु देश के भाग्य की विड़म्बना यह रही है कि शताब्दियों से श्रेष्ठता की साधना में तल्लीन महमूद गजनवी जैसे आक्रान्ताओं की विषयाकांक्षा का यह कोप-भाजन बन गया और शताब्दियों तक उस कोप से मुक्ति नहीं मिली। अरब के देशों में आठवीं-नवीं शताब्दी में सूफी मत का उदय हो चुका था किन्तु आदिकाल के अन्त तक भी उसके उदार स्वरूप का प्रवेश तक न हो सका। क्योंकि भारत में जो आक्रान्ता आए, वे उदार भावनाओं के समर्थक नहीं थे। इसलिए इस्लाम संस्कृति का पोषक तत्त्व न बन सका। परिणामस्वरूप दो संस्कृतियाँ एक-दूसरे के सामने मानसिक तनाव की स्थिति में खड़ी एक-दूसरे को शंका की दृष्टि से देखती रहीं। आदिकाल में भारतीय संस्कृति का जो स्वरूप मिलता है, वह परम्परागत गौरव से रहित तथा मुस्लिम संस्कृति के गहरे प्रभाव से निर्मित है। इस काल में हिन्दू-संस्कृति धीरे-धीरे मुस्लिम संस्कृति से प्रभावित होने लगी। भारत के उत्सव, मेलों, त्यौहारों, वेश-भूषा विवाह तथा मनोरंजन आदि पर मुस्लिम रंग मिलने लगा। यहाँ के गायन, वादन तथा नृत्य पर मुस्लिम छाप स्पष्ट है। भारतीय संगीत में सारंगी, तबला तथा अलगोजा जैसे वाद्यों का समावेश इसका स्पष्ट प्रमाण है। चित्राकला के क्षेत्रा में इस काल में जो थोड़ा-बहुत कार्य हुआ, उस पर भी मुस्लिम प्रभाव पाया जाता है। मूर्तिकला को छोड़कर अन्य भारतीय ललित कलाओं में मुस्लिम कला की कलम गहरे रूप में लगी।

उपसंहार

प्रकारान्तर से इसी क्रम में कहा जा सकता है कि दूसरों की सम्पत्ति किसी प्रकार अर्जित कर लेना ही तात्कालिक रूप से बुद्धिमता की परिभाषा थी। इसी प्रकार हर अवस्था में अपने को किसी भी तरह सत् साबित कर लेना ही व्यक्ति की बौद्धिकता मानी जाती रही है। उस समय की अधिकांश स्थितियाँ आज के अफगानिस्तान के तालिवानी शासन के दौरान की स्थितियों के ही समकक्ष रही हैं। बहरहाल तत्कालीन स्थितियों में किसी के धन से किसी भी तरह स्वयं को धनवान साबित कर लेना ही धनवान की परिभाषा रही है। इसी क्रम में कहा जा सकता है कि सच-झूठ प्रचारित कर स्वयं को ही सबसे ज्यादा योग्य, विचारवान, आचार-विचार-संस्कार-संयम सम्पन्न व्यक्ति प्रमाणित करना ही तत्कालीन परिवेशं में व्यक्तित्व के स्वरूप

www.ignited.in

को परिभाषित करने में सबसे प्रामाणिक संदर्भ हुआ करता था। बहरहाल निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि पूर्व मध्यकालीन समाज की पूरी सामाजिक संरचना ही अव्यवस्थित, अमर्यादित, विश्रंखलित, पतित अविश्वसनीय, जर्जर, घृणित, संवेदना ही न संस्कार हीन और त्याज्य संदर्भो से भरपूर रही हैजिसे किसी भी देश, काल और परिवेश में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. कवित्त रसाककर - सेनापति
2. रामरसायन - पद्माकर
3. प्रबोध पचासा -पद्माकर
4. रामायण - भानुभक्त
5. इंडियन टेरिक्वेरी - सर जार्ज अब्राहमन गियर्सन द माडर्न बर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ
6. तुलसीदास के काव्य में नैतिक मूल्य, प्रथम संस्करण - चरणदास शर्मा
7. थियोलॉजी ऑफ तुलसीदास - कारपेंटर।
8. तुलसी श्आधुनिक वातायन से – डॉ. रमेश कुन्तल मेघ
9. हिन्दी साहित्य की भूमिका – डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी।
10. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन एण्ड एथिक्स सर जार्ज अब्राहमन गियर्सन
11. हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास प्रथम संस्करण - किशोरी लाल गुप्त

Corresponding Author

Dr. Shriphal Meena*

Lecturer, Department of History, Govt. College Karauli, Rajasthan